Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 SHISRRJ | Volume 4 | Issue 5 | ISSN : 2581- 6306

श्रीमद्भागवतमहापुराण में वैराग्य विद्या का दिग्दर्शन

डॉ. सुमन
प्रोफेसर पतंजलि आयुर्वेद महाविद्यालय, हरिद्वार।
एवं शोधच्छात्रा डी. लिट. पतंजलि विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

Article Info
Volume 4, Issue 5
Page Number : 22-27

Publication Issue :
September-October-2021

Article History
Accepted : 01 Sep 2021
Published : 09 Sep 2021

शोध-सार- इस संसार में जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त सुख-दु:ख का सिलसिला निरन्तर चलता रहता है। मनुष्य अपनी साधारण दृष्टि से जिसे सुख समझता है, वह भी क्षणिक, दु:खमिश्रित एवं दु:खरूप ही सिद्ध होता है। इसलिए विवेकी व्यक्ति दु:ख की आंशिक एवं आत्यन्तिक निवृत्ति के लिए सदा प्रयत्नशील रहते हैं। दु:ख की अत्यन्त निवृत्ति (मोक्ष) कैसे हो- इसी का एक प्रमुख उपाय वेद, उपनिषद्, दर्शन, मनुस्मृति, रामायण, गीता, महाभारत, पुराण व अन्य काव्य तथा महाकाव्यों में वैराग्य को बताया गया है। इस क्लेश-बहुल संसार में सुखात्मकता की भावना का उद्भावक कोई भी प्रकारन्तर नहीं दीखता। समस्त भूमण्डल के विवेचक, महर्षि पतञ्जलि के इस सूत्र से सहमत हैं- परिणामतापसंस्कारदु:खैर्गुण-वृत्तिविरोधाच्च दु:खमेव सर्वं विवेकिन: परिणाम, ताप, संस्कार व दु:खों से और सत्त्व, रज, तम गुणों के स्वभावों में परस्पर विरोध होने से विवेकी (योगी) के लिए सब दु:ख ही है अर्थात् लौकिक सुख भी दु:ख के समान ही है।

भर्तृहरि ने तो वैराग्यशतकम् में यहाँ तक कह दिया कि संसार में वैराग्य के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु ऐसी नहीं जो पूर्णरूप से अभय देने वाली हो। एकमात्र वैराग्य भाव ही सब ओर से निर्भीकता प्रदान करने वाला है-

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं, वित्ते नृपालाद् भयं,
मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम्।
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद् भयं,
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्॥[1]

वैराग्य के लिए शरीर की रचना को समझना आवश्यक है। विषयों में रमण करने वाले सांसारिक भोगियों की प्रकृति स्वत: ही वासनाओं की मूर्त्तरूप देह की ओर अधिक देखी जाती है। इसी के द्वारा वे इस देह से सुख-दु:ख, भय, शोक, रोग, भोग आदि परिणाम तथा फल निरन्तर प्राप्त किया करते हैं। दूसरी ओर योगी इसी काया के द्वारा त्याग भाव से अनासक्त होकर अपने भोगों की निवृत्ति तथा भोगों की कामना को नष्ट करके परम सुख मोक्ष की ओर चल पड़ते हैं।

प्रमुख शब्द- ज्ञान, तृष्णा, मुक्ति, अध्यात्म, नि:श्रेयस, उपरति।

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

वैराग्य के हेतु-

ज्ञान- आध्यात्मिक शास्त्रों के अध्ययन व स्वाध्याय करने से यह बोध हो जाता है कि संसार में जो भी कुछ है, वह केवल साधन मात्र है, साध्य नहीं है। इस प्रकार के वैराग्यपरक बोध से सांसारिक पदार्थों में आसक्ति नहीं होती है।

ईश्वरभक्ति- जब किसी व्यक्ति की ईश्वर में नि:स्वार्थ भक्ति दृढ़ हो जाती है तो वह भौतिक पदार्थों में आसक्त कभी नहीं होता है; अपितु सभी पदार्थों को ईश्वर का मानकर उनका त्यागभाव से भोग करता है।

प्रिय व्यक्ति का वियोग- संसार में प्राय: देखा जाता है कि जब किसी प्रिय व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है अथवा वह छोड़कर कहीं ओर चला जाता है तो उसको संसार में कुछ भी अच्छा नहीं लगता और उसकी संसार के प्रति आसक्ति समाप्त होने लगती है।

संसार की अनित्यता- जब व्यक्ति को संसार की अनित्यता का अर्थात् अस्थिरता का बोध हो जाता है तो वह सांसारिक पदार्थों का संकलन करने में रूचि नहीं रखता है; अपितु जितने संसाधनों की उसे आवश्यकता होती है, उतने का ही संग्रह करता है अधिक का नहीं।

भोगों से अतृप्ति- अनन्तकाल तक भोग भोगते रहने पर भी जब व्यक्ति को तृप्ति नहीं मिलती है तो वह इस बात को समझ जाता है कि भोग भोगने में तृप्ति नहीं मिलेगी अत: इनको छोड़ने में ही लाभ है ऐसा सोचकर के वह भोगों से उन्मुख होने लगता है।

तृष्णा की असमाप्ति- बहुत अधिक धन–सम्पत्ति व सुख–साधनों का संग्रह करने पर भी उसे ओर अधिक बढ़ाने की लालसा बनी रहती है, कम या समाप्त नहीं होती है, यह देखकर बुद्धिमान् व्यक्ति संग्रह करना छोड़ देता है और त्याग के रास्ते पर चल पड़ता है।

भोगों का दुष्परिणाम- आवश्यकता से अधिक भोगों को भोगने से शरीर का अस्वस्थ हो जाना, मन का अस्थिर हो जाना व इन्द्रियों का विकारयुक्त हो जाना आदि देखकर व्यक्ति भोगों से मुख मोड़कर श्रेष्ठ मार्ग की ओर चल पड़ता है।

प्रियजनों का दुर्व्यवहार- संसार में देखा जाता है कि जब कोई अपना प्रियजन व्यक्ति धोखा देता है, दु:ख–सुख में साथ छोड़ देता है। हमारी उन्नति को सहन नहीं करता है अपितु शत्रुता रखता है तो व्यक्ति संसार से उदासीन होकर मुक्ति के मार्ग पर चल पड़ता है।

सुख की क्षणिकता- प्रिय से प्रिय सांसारिक वस्तु क्षणिक सुख व शान्ति देने वाली है। यह देखकर विद्वान् व्यक्ति क्षणिक सुख देने वाली सांसारिक वस्तुओं के पीछे न भागकर स्थायी सुख देने वाली मुक्ति की ओर अग्रसर होता है।

विरक्त व्यक्ति का सान्निध्य- किसी योगी विरक्त संन्यासी की सन्निधि में रहकर भोगी से भोगी व्यक्ति भी उनके तप व पुरुषार्थ तथा उन्नत, आनन्दित व संतोष से परिपूर्ण जीवन से प्रभावित होकर संसार को त्यागकर मोक्ष पथ पर चल पड़ता है।

संस्कृत वाङ्मय में पुराणों का अतुलनीय महत्त्व है। चतुर्दश विद्याओं में पुराणों की गणना की जाती है। प्रस्तुत शोधपत्र में श्रीमद्भागवतमहापुराणगत वैराग्य विषय का दिग्दर्शन कराया गया है। जैसे कि कहा गया है–

यः स्वकात्परतो वेह जातनिर्वेद आत्मवान्। हृदि कृत्वा हरिं गेहात्प्रव्रजेत्स नरोत्तमः॥[2]

श्रोतव्यादीनि राजेन्द्र नृणां सन्ति सहस्रशः। तेषां प्रमत्तो निधनं पश्यन्नपि न पश्यति॥[3]

चाहे अपनी समझ से हो या दूसरे के समझाने से- जो इस संसार को दुःख रूप समझकर इससे विरक्त हो जाता है और अपने अन्तःकरण को वश में करके हृदय में भगवान् को धारण कर संन्यास के लिए घर से निकल पड़ता है, वही उत्तम मनुष्य है। जो गृहस्थ घर के काम-धन्धों में उलझे हुए हैं, अपने स्वरूप को नहीं जानते, उनके लिए हजारों बाते कहने-सुनने एवं सोचने, करने की रहती हैं। उनकी सारी उम्र यों ही बीत जाती है। उनकी रात नीन्द या स्त्री-प्रसंग से कटती है और दिन धन की हाय-हाय या कुटुम्बियों के भरण-पोषण में समाप्त हो जाता है। संसार में जिन्हें अपना अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्धी कहा जाता है, वे शरीर, पुत्र, स्त्री आदि कुछ नहीं हैं, असत् हैं; परन्तु जीव उनके मोह में ऐसा पागल-सा हो जाता है कि रात-दिन उनको मृत्यु का ग्रास होते देखकर भी चेतता नहीं।

योग आध्यात्मिकः पुंसां मतो निःश्रेयसाय मे। अत्यन्तोपरतिर्यत्र दुःखस्य च सुखस्य च॥[4]

चेतः खल्वस्य बन्धाय मुक्तये चात्मनो मतम्। गुणेषु सक्तं बन्धाय रतं वा पुंसि मुक्तये॥[5]

यह मेरा निश्चय है कि अध्यात्मयोग ही मनुष्यों के आत्यन्तिक कल्याण का मुख्य साधन है, जहाँ दुःख और सुख की सर्वथा निवृत्ति हो जाती है। इस जीव के बन्धन और मोक्ष का कारण मन ही माना गया है। विषयों में आसक्त होने पर वह बन्धन का हेतु होता है और परमात्मा में अनुरक्त होने पर वही मोक्ष का कारण बन जाता है।

प्रसङ्गमजरं पाशमात्मनः कवयो विदुः। स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारमपावृतम्॥[6]

इमं लोकं तथैवामुमात्मानमुभयायिनम्। भजन्त्यनन्यया भक्त्या तान्मृत्योरतिपारये॥[7]

विवेकीजन संग या आसक्ति को ही आत्मा का अच्छेद्य बन्धन मानते हैं; किन्तु वही संग या आसक्ति जब सन्तों-महापुरुषों के प्रति हो जाती है तो मोक्ष का खुला द्वार बन जाती है। जो लोग इहलोक, परलोक और इन दोनों लोकों में साथ जाने वाले वासनामय लिंगदेह को तथा शरीर से सम्बन्ध रखने वाले जो धन, पशु एवं गृह आदि पदार्थ हैं, उन सबको और अन्यान्य संग्रहों को भी छोड़कर अनन्य भक्ति से सब प्रकार मेरा ही भजन करते हैं-उन्हें मैं मृत्युरूप संसारसागर से पार कर देता हूँ।

अहं ममाभिमानोत्थैः कामलोभादिभिर्मलैः। वीतं यदा मनः शुद्धमदुःखमसुखं समम्॥

ज्ञानवैराग्ययुक्तेन भक्तियुक्तेन चात्मना। परिपश्यत्युदासीनं प्रकृतिं च हतौजसम्॥[8]

जिस समय यह मन मैं और मेरे पन के कारण होने वाले काम-लोभ आदि विकारों से मुक्त एवं शुद्ध हो जाता है, उस समय वह मन सुख-दुःख से छूटकर सम अवस्था में आ जाता है। तब जीव अपने ज्ञान-वैराग्य और भक्ति से युक्त हृदय से आत्मा को प्रकृति से परे, एकमात्र (अद्वितीय), भेदरहित, स्वयंप्रकाश, सूक्ष्म, अखण्ड और उदासीन (सुख-दुःखशून्य) देखता है तथा प्रकृति को शक्तिहीन अनुभव करता है।

प्रसङ्गमजरं पाशमात्मनः कवयो विदुः। स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारमपावृतम्॥[9]

इमं लोकं तथैवामुमात्मानमुभयायिनम्। आत्मानमनु ये चेह ये रायः पशवो गृहाः॥

विसृज्य सर्वानन्यांश्च मामेवं विश्वतोमुखम्। भजन्त्यनन्यया भक्त्या तान्मृत्योरतिपारये॥[10]

विवेकीजन संग या आसक्ति को ही आत्मा का अच्छेद्य बन्धन मानते हैं; किन्तु वही संग या आसक्ति जब सन्तों-महापुरुषों के प्रति हो जाती है तो मोक्ष का खुला द्वार बन जाती है। जो लोग इहलोक, परलोक और इन दोनों लोकों में साथ जाने वाले वासनामय लिंगदेह को तथा शरीर से सम्बन्ध रखने वाले जो धन, पशु एवं गृह आदि पदार्थ हैं, उन

सबको और अन्यान्य संग्रहों को भी छोड़कर अनन्य भक्ति से सब प्रकार मेरा ही भजन करते हैं–उन्हें मैं मृत्युरूप संसारसागर से पार कर देता हूँ।

एवं विदिततत्त्वस्य प्रकृतिर्मयि मानसम्। युञ्जतो नापकुरुत आत्मारामस्य कर्हिचित्॥

यदैवमध्यात्मरतः कालेन बहुजन्मना। सर्वत्र जातवैराग्य आब्रह्मभुवनान्मुनिः॥[11]

यं यमर्थमुपादत्ते दुःखेन सुखहेतवे। तं तं धुनोति भगवान् पुमाञ्छोचति यत्कृते।

यदध्रुवस्य देहस्य सानुबन्धस्य दुर्मतिः। ध्रुवाणि मन्यते मोहाद् गृहक्षेत्रवसूनि च॥[12]

उसी प्रकार जिसे तत्त्वज्ञान हो गया है और जो निरन्तर मुझमें ही मन लगाये रहता है, उस आत्माराम मुनि का प्रकृति कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। जब मनुष्य अनेकों जन्मों में बहुत समय तक इस प्रकार आत्मचिन्तन में ही निमग्न रहता है, तब उसे ब्रह्मलोकपर्यन्त सभी प्रकार के भोगों से वैराग्य हो जाता है। जीव सुख की अभिलाषा से जिस–जिस वस्तु को बड़े कष्ट से प्राप्त करता है, उसी–उसी को भगवान् काल विनष्ट कर देता है–जिसके लिए उसे बड़ा शोक होता है। इसका कारण यही है कि यह मन्दमति जीव अपने इस नाशवान् शरीर तथा उसके सम्बन्धियों के घर, खेत और धन आदि को मोहवश नित्य मान लेता है।

ये स्वधर्मान्न दुह्यन्ति धीराः कामार्थहेतवे। निःसङ्गान्यस्तकर्माणः प्रशान्ताः शुद्धचेतसः॥

निवृत्तिधर्मनिरता निर्ममा निरहङ्कृताः। स्वधर्माख्येन सत्त्वेन परिशुद्धेन चेतसा॥[13]

ये त्विहासक्तमनसः कर्मसु श्रद्धयान्विताः। कुर्वन्त्यप्रतिषिद्धानि नित्यान्यपि च कृत्स्नशः॥

रजसा कुण्ठमनसः कामात्मानोऽजितेन्द्रियाः। पितॄन् यजन्त्यनुदिनं गृहेष्वभिरताशयाः॥[14]

जो विवेकी पुरुष अपने धर्मों का अर्थ और भोग–विलास के लिए उपयोग नहीं करते, अपितु भगवान् की प्रसन्नता के लिए ही उनका पालन करते हैं– वे अनासक्त, प्रशान्त, शुद्धचित्त, निवृत्तिधर्मपरायण, ममतारहित और अहङ्कारशून्य पुरुष स्वधर्मपालनरूप सत्त्वगुण के द्वारा सर्वथा शुद्धचित्त हो जाते हैं। जिनका चित्त इस लोक में आसक्त है और जो कर्मों में श्रद्धा रखते हैं, वे वेद में कहे हुए काम्य और नित्य कर्मों का साङ्गोपाङ्ग अनुष्ठान करने में ही लगे रहते हैं। उनकी बुद्धि रजोगुण की अधिकता के कारण कुण्ठित रहती है, हृदय में कामनाओं का जाल फैला रहता है और इन्द्रियाँ उनके वश में नहीं होती; बस अपने घरों में ही आसक्त होकर वे नित्यप्रति पितरों की पूजा में लगे रहते हैं।

एतावानेव योगेन समग्रेणेह योगिनः। युज्यतेऽभिमतो ह्यर्थो यदसङ्गस्तु कृत्स्नशः॥[15]

यथा महानहंरूपस्त्रिवृत्पञ्चविधः स्वराट्। एकादशविधस्तस्य वपुरण्डं जगद्यतः॥

एतद्वै श्रद्धया भक्त्या योगाभ्यासेन नित्यशः। समाहितात्मा निःसङ्गो विरक्त्या परिपश्यति॥[16]

सम्पूर्ण संसार में आसक्ति का अभाव हो जाना–बस, यही योगियों के सब प्रकार के योगसाधन का एकमात्र अभीष्ट फल है। जिस प्रकार एक ही परब्रह्म महत्तत्त्व, वैकारिक, राजस और तामस–तीन प्रकार का अहङ्कार, पंचमहाभूत एवं ग्यारह इन्द्रियरूप बन गया और फिर वही स्वयंप्रकाश इनके संयोग से जीव कहलाया, उसी प्रकार उस जीव का शरीररूप यह ब्रह्माण्ड भी वस्तुतः ब्रह्म ही है, क्योंकि ब्रह्म से ही इसकी उत्पत्ति हुई है। किन्तु इसे ब्रह्मरूप वही देख सकता है, जो श्रद्धा, भक्ति और वैराग्य तथा निरन्तर के योगाभ्यास के द्वारा एकाग्रचित्त और असंगबुद्धि हो गया है।

इन्द्रियैर्विषयाकृष्टैराक्षिप्तं ध्यायतां मनः।

चेतनां हरते बुद्धेः स्तम्बस्तोयमिव ह्रदात्॥[17]

जो लोग विषयचिन्तन में लगे रहते हैं, उनकी इन्द्रियाँ विषयों में फंस जाती हैं तथा मन को भी उन्हीं की ओर खींच ले जाती हैं। फिर तो जैसे जलाशय के तीर पर उगे हुए कुशादि अपनी जड़ों से उसका जल खींचते रहते हैं, उसी प्रकार वह इन्द्रियासक्त मन बुद्धि की विचारशक्ति को क्रमशः हर लेता है। भरत ऋषि राजा रहूगण को उपदेश देते हैं–

देहेऽस्थिमांसरुधिरेऽभिमतिं त्यज त्वं जायासुतादिषु सदा ममतां विमुञ्च।

पश्यानिशं जगदिदं क्षणभङ्गनिष्ठं वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः॥[18]

यह शरीर हड्डी, मांस और रुधिर का पिण्ड है; इसे आप मैं मानना छोड़ दें और स्त्री–पुत्रादि को अपना कभी न मानें। इस संसार को रात–दिन क्षणभंगुर देखें, इसकी किसी भी वस्तु को स्थायी समझकर उसमें राग न करें। बस, एकमात्र वैराग्यरस के रसिक होकर भगवान् की भक्ति में लगे रहें। भगवद्भजन ही सबसे बड़ा धर्म है, निरन्तर उसी का आश्रय लिए रहें। अन्य सब प्रकार के लौकिक धर्मों से मुख मोड़ लें। सदा साधुजनों की सेवा करें। भोगों की लालसा को पास न फटकने दें तथा शीघ्र–से–शीघ्र दूसरों के गुण–दोषों का विचार करना छोड़कर एकमात्र भगवत्सेवा और भगवान् की कथाओं के रस का ही पान करें।

यथा प्रदीपो घृतवर्तिमश्नन् शिखाः सधूमा भजति ह्यन्यदा स्वम्।

पदं तथा गुणकर्मानुबद्धं वृत्तीर्मनः श्रयतेऽन्यत्र तत्त्वम्॥[19]

विषयासक्त मन जीव को संसार–संकट में ड़ाल देता है, विषयहीन होने पर वही उसे शान्तिमय मोक्षपद प्राप्त करा देता है। जिस प्रकार घी से भीगी हुई बत्ती को खाने वाले दीपक से तो धुएं वाली शिखा निकलती रहती है और जब घी समाप्त हो जाता है तब वह अपने कारण अग्नितत्त्व में लीन हो जाती है उसी प्रकार विषय और कर्मों से आसक्त हुआ मन तरह–तरह की वृत्तियों का आश्रय लिये रहता है और इनसे मुक्त होने पर वह अपने तत्त्व में लीन हो जाता है।

तस्मिन् कलेवरेऽमेध्ये तुच्छनिष्ठे विषज्जते। अहो सुभद्रं सुनसं सुस्मितं च मुखं स्त्रियः॥

त्वङ्मांसरुधिरस्नायुमेदोमज्जास्थिसंहतौ। विण्मूत्रपूये रमतां कृमीणां कियदन्तरम्॥

अथापि नोपसज्जेत स्त्रीषु स्त्रैणेषु चार्थवित्। विषयेन्द्रियसंयोगान्मनः क्षुभ्यति नान्यथा॥

अदृष्टादश्रुताद् भावान्न भाव उपजायते। असम्प्रयुञ्जतः प्राणान् शाम्यति स्तिमितं मनः॥[20]

यह शरीर मल–मूत्र से भरा हुआ अत्यन्त अपवित्र है। इसका अन्त यही है कि पक्षी खाकर विष्ठा कर दें, इसके सड़ जाने पर इसमें कीड़े पड़ जाएँ अथवा जला देने पर यह राख का ढेर हो जाए। ऐसे शरीर पर लोग लट्टू हो जाते हैं और कहने लगते हैं–अहो! इस स्त्री का मुखड़ा कितना सुन्दर है! नाक कितना सुघड़ है और मन्द–मन्द मुस्कान कितनी मनोहर है। यह शरीर त्वचा, माँस, रुधिर, स्नायु, मेदा, मज्जा और हड्डियों का ढेर और मल–मूत्र तथा पीब से भरा हुआ है। यदि मनुष्य इसमें रमता है तो मल–मूत्र के कीड़ों में और उसमें अन्तर ही क्या है। इसलिए अपनी भलाई समझने वाले विवेकी मनुष्य को चाहिए कि स्त्रियों और स्त्री–लम्पट पुरुषों का संग न करे। विषय और इन्द्रियों के संयोग से ही मन में विकार होता है; अन्यथा विकार का कोई अवसर ही नहीं है। जो वस्तु कभी देखी या सुनी नहीं गयी है, उसके लिए मन में विकार नहीं होता। जो लोग विषयों के साथ इन्द्रियों का संयोग नहीं होने देते, उनका मन अपने–आप निश्चल होकर शान्त हो जाता है।

निष्कर्ष- श्रीमद्भागवतपुराण में न जाने कितने सारे प्रसंग आसक्ति को छोड़कर मुक्ति की ओर ले चलने वाले हैं। इनका अति संक्षिप्त दिग्दर्शन यहाँ कराया गया है। इस संसाररूपी नदी से पार होकर ही जीवन सुखी हो सकता है। यह संसार

एक बहुत भंयकर नदी है। इस नदी को पार करना ही मनुष्य का मुख्य उद्देश्य है। बिना वैराग्यरूपी नाव के इस नदी को पार नहीं किया जा सकता। अतः सभी मनुष्यों को इस वैराग्यरूपी नाव में बैठकर इस नदी को पार करना चाहिए। मोहरूप पाशों को तथा मृत्युरूप पाशों को खोलने की बात का तो विशद् वर्णन प्रकृत पुराण में मिलता है। जिसका प्रत्यक्ष उपर्युक्त विवरण के द्वारा हम सबको प्राप्त हुआ।

सन्दर्भ-

1. श्री भर्तृहरि, 1976 ई., चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, उ.प्र., वैरा.श. 31
2. मोतीलाल जालान, सम्वत् 2033, गीता प्रेस गोरखपुर, उ.प्र., श्रीमद्.म.पु. 1.13.26
3. वही. 2.1.2-4
4. वही. 3.25.13
5. वही. 3.25.15
6. वही. 3.25.20
7. वही. 3.25.39,40
8. वही. 3.25.16-18
9. वही. 3.25.20
10. वही. 3.25.39,40
11. वही. 3.27.26,27
12. वही. 3.30.2,3
13. वही. 3.32.5,6
14. वही. 3.32.16,17
15. वही. 3.32.27
16. वही. 3.32.29,30
17. वही. 4.22.30
18. वही. 4.22.79,80
19. वही. 5.11.8
20. वही. 11.26.20-23